तृतीय अध्याय

सृष्टिपूर्व में चेतना एवं सृष्टि

कबीर साहब के प्रिय शिष्य धर्मदास के मन में सृष्टि पूर्व में चेतना एवं आदि उत्पत्ति से सम्बन्धित जिज्ञासा उत्पन्न हुई, अतः वे सद्गुरु कबीर साहब से अपनी जिज्ञासा–समाधान हेतु प्रार्थना करने लगे –

आदि उत्पत्ति कहो सतगुरु, कृपाकरी निज दास को।।
बचन सुधा सुप्रकाश कीजै, नाश हो यमत्रास को।।
एक एक विलोय वर्णहु, दास मोहि निज जानिकै।।
सत्यवक्ता सद्गुरु तुम, लेब निश्चय मानिकै।।[1]

कबीर साहब कहते हैं –

धर्मदास अधिकारी पाया। ताते मैं कहि भेद सुनाया।।
अब तुम सुनहु आदि की बानी। भाषों उत्पति प्रलय निशानी।।[2]

कबीर साहब कहते हैं कि सृष्टि पूर्व में पृथिवी, पाताल तथा आकाशादि कुछ भी नहीं था। उस समय कूर्म, वराह, शेषनाग, सरस्वती, पार्वती, गणेश नहीं थे। तब काल और माया भी नहीं थे जिनके कारण यह संसार चौरासी लाख योनियों में ग्रसित हुआ। उस समय तेंतीस करोड़ देवता तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी नहीं थे। वेद–शास्त्र और पुराणादि भी न थे। ये सब उसी प्रकार थे जिस प्रकार एक बीज के अन्दर बहुत बड़ा वट वृक्ष समाहित रहता है–

तब की बात सुनहु धर्मदासा। जब नहिं महिं पाताल अकाशा।।
जब नहिं कूर्म बराह और शेषा। जब नहिं शारद गौरि गणेशा।।
जब नहिं हते निरंजन राया। जिन जीवन कह बांधि झुलाया।।
तेतिस कोटि देवता नाहीं। और अनेक बताऊ काही।।
ब्रह्मा विष्णु महेश न तहिया। शास्त्र वेद पुराण न कहिया।।
तब सब रहे पुरुष के माहीं। ज्यों बट वृक्ष मध्य रह छाहीं।।[3]

तथा –

आदि उत्पति सुनहु धर्मानि, कोइ न जानत ताहि हो।।
सबहि मो विस्तार पाछे, खास देउँ मैं काहि हो।।[4]

सृष्टि पूर्व में परम पुरुष सुन्न समाधि में लीन थे। सर्व प्रथम जब परम शक्ति में यह इच्छा जाग्रत हुई कि सृष्टि की रचना की जाय तब उस परम शक्ति से एक शब्द प्रकट हुआ जिससे समस्त लोकों की रचना हुई।

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में भी वर्णित है कि सृष्टि के आरम्भ में न असत् था न सत् था, न अन्तरिक्ष था और न व्योम। मृत्यु का भी भय नहीं था, केवल वह एक था। सर्वत्र अन्धकार तथा जल था। सृष्टि के आरम्भ में एक कोई 'अव्यक्तचेतन' था उसी से सृष्टि के वैचित्र्य का अभिव्यक्तिकरण हुआ। इच्छा ही इस जगत् का प्रारम्भिक बीज थी। सृष्टि अथवा जगत् और जीवन दोनों की रचना के मूल में काम है। मन से उत्पन्न इच्छा के समान कामना सर्वत्र विद्यमान थी। वह इस जगत् के प्रारम्भिक बीज के समान थी।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।[5]

प्रश्नोपनिषद् के अन्तर्गत अन्तिम प्रश्न में जिन षोडश कलाओं का कथन है, उनके मूल में इच्छा की विद्यमानता है। सृष्टि के मूल में काम का मंगलमय रूप ही प्रवृत्त है।

काम मंगल से मंडित श्रेय, सर्ग इच्छा का है परिणाम।[6]

संत गुलाव साहब ने स्पष्ट कहा है कि आदि शक्ति की इच्छा से ही सृष्टि की रचना हुई है तथा यह रचना चेतन शब्द से ही हुई।

आदि ब्रह्म की उपजी इच्छा, तब उठी चेतन परिच्छा।
चेतन शब्द भयो इक ठाँई, पाँच तत्त्व ले जग उपजाई।[7]

संत गुरु नानक देव, संत तुलसी साहब, पलटू साहब आदि ने सतलोक तक की चेतन शक्ति का बहुविध बखान किया है।

ऊपर कहा गया कि परम शक्ति के अन्दर जब सृष्टि–रचना की इच्छा हुई तो शब्द प्रकट हुआ और उसी से समस्त सृष्टि की रचना हुई। संस्कृत व्याकरण में स्फोट सिद्धान्त माना गया है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में कहा है कि स्फोट रूप शब्द ही एक मात्र सत्यभ्त पदार्थ है। यह जगत् स्फोट का विवर्तमात्र है।

लघुमंजूषा में नागेश भट्ट ने कहा है कि स्फोट उस आन्तरिक, आध्यात्मिक ध्वनि अर्थात् प्रणव के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है जो ब्रह्म का समानार्थक शब्द है। परम वैज्ञानिक, परम संत राधास्वामी मत के परमाचार्य प्रो. प्रेमसरन सत्संगो साहब ने बिग–बैंग थ्योरी का कथन किया है जो वस्तुतः स्फोट है। यह बिग–बैंग तीन बार

हुआ – सर्वप्रथम परम पुरुष के नीचे के स्थान अर्थात् अब जो अगम पुरुष हैं, उनके ऊपर के स्थान (निर्मल चेतन देश) में हुआ, द्वितीय बिग–बैंग महासुन्न में हुआ और तृतीय बिग–बैंग चिदाकाश में हुआ। पहले बिग–बैंग में कोई धमाका नहीं था; यह बहुत शान्तमय रूप से हुआ (अधिक ज्ञान एवं संदर्भ ज्ञान के लिए देखिये पुस्तक चेतना के त्रिविध आयाम, पृ. 38 से 41 तक) सृष्टि के पूर्व की दशा में परमपुरुष अनामी थे उन्होंने अपने नाम को व्यक्त नहीं किया था। न उनका कोई आकार था, न रंग था, न रूप था। वे अनन्त थे, अपार थे, सत–चित आनन्द–प्रकाश स्वरूप थे। सृष्टि के पूर्व परम–पुरुष शून्य समाधि में लीन थे। पूरी तरह आत्मरत थे (प्रेम प्रचारक, 3 मार्च, 2008, पृ. 2) परम पुरुष सुरतों का परम भण्डार, परम आनन्दमय, परम ज्ञानमय, परम शक्तिमय तथा परम प्रकाशमय थे। उनके संज्ञान में यह आया कि उनके शीर्ष में जो सुरतें थीं, वे तो अनन्त चैतन्य थीं पर एक ध्रुवीकरण इन सुरतों के भण्डार में था। उत्तरी ध्रुव अर्थात् परम पुरुष के शीर्ष में तो अनन्त चैतन्यता थी पर परम पुरुष के निम्न ध्रुव में, दक्षिणी ध्रुव में चेतनता न्यूनतम थी। उनके मध्य भाग में तटस्थ स्थिति थी। परन्तु उनके संज्ञान में यह आया कि उनके चरणों में जो सुरतें स्थित हैं, वे शिथिल निद्राण अवस्था में हैं और उन्हें परम पुरुष के परम आनन्द, परम शक्ति, परम ज्ञान और परम प्रकाश का जरा भी अहसास नहीं। अतः परम पुरुष द्वारा दयालुता से प्रेरित होकर इस स्थिति से इन सुरतों को उबारने के लिए इस सृष्टि को रचने का कदम उठाया। (प्रेम प्रचारक, 18 अक्टूबर 2004)

चैतन्य पुरुष, परम पुरुष समाधि से उठे, उनमे ंये हिलोर उठी, मौज उठी, भारी मौज उठो, मानिये एक ज्वार की तरह चैतन्यता के महा–महासागर में ये ज्वार उठा (प्रेम प्रचारक, 3 मार्च 2008, पृ. 2) जब यह महान् ज्वार परम–पुरुष में उठा तो उसके साथ शब्द भी उत्पन्न हुआ। (प्रेम प्रचारक, 3.3.2008) पारमार्थिक दृष्टि से स्फोट (चेतन तत्त्व) शब्द है, ध्वनि उस शब्द का गुण है।

इस प्रकार परम वैज्ञानिक परम संत तथा राधास्वामी मत के वर्तमान संत सतगुरु प्रो. प्रेमसरन सत्संगी साहब के अनुसार – "सृष्टि के पूर्व जब परम पुरुष शून्य समाधि में लीन थे; आत्मरत थे, अपने में लीन थे, विज्ञान के हिसाब से यह चैतन्य शक्ति उस वक्त पूरी तरह गोपनीय थो, स्थितज अवस्था में थी, पोटेन्शियल फॉर्म (Potential Form) में एनर्जी (Energy) थी; जो कार्यशील नहीं हुई थी, गतिशील नहीं हुई थी। धर्म के हिसाब से जब चैतन्य पुरुष, परम पुरुष समाधि से उठे, उनमें ये हिलोर

उठी, मौज उठी, भारी मौज उठी, मानिये एक ज्वार की तरह, महान् ज्वार की तरह सागर में, महासागर में, महा–महासागर में चैतन्यता का जो यह ज्वार उठा (प्रेम प्रचारक 3 मार्च 2008, पृ. 2) इस प्रकार यह चेतन शक्ति गुप्त से प्रकट दशा में परिणत हुई। (प्रेम प्रचारक 22 दिसम्बर1986)

वस्तुतः आदि चेतन शक्ति के दो रूप हैं – गप्त ओर प्रकट "इस प्रकार यह चेतन शक्ति गुप्त से प्रकट दशा में परिणत हुई (प्रेम प्रचारक 22 दिसम्बर 1986) गुप्त और प्रकट ये चेतन शक्ति के रूप द्वय हैं। इस चेतन शक्ति की क्रिया अन्तर्मुखी एवं आकर्षक है।

अनुराग सागर में कहा है –

धर्मदास यह अचरज बानी। गुप्त प्रगट चीन्हे सो ज्ञानी।[8]

सर साहब जी महाराज ने 'सुरत शब्द योग' नामक लेख में कहा है "हर कोई जानता है कि प्रत्येक शक्ति के दो रूप होते हैं – गुप्त और प्रकट, जब कोई शक्ति गुप्त रूप में होती हैं तो मनुष्य को उसका कोई ज्ञान नहीं हो सकता। वह अरूप और अनाम रहती है। जब वह क्रियावती होती है, तभी मनुष्य को उसका ज्ञान होता है और जब कोई शक्ति क्रियावती होती है तो उसका विकास धारा रूप से हुआ करता है अर्थात् उसकी धाराएं चतुर्दिक फैलकर मण्डल बाँधती है और ऐसी प्रत्येक धारा के संग–संग एक शब्द की धारा प्रवाहित होती है। इसीलिये कहा जाता है कि – जहाँ कोई शक्ति क्रियावती होती है, वहाँ शब्द की ध्वनि भी विद्यमान रहती है।[9]

अनुराग सागर की निम्न पंक्तियों में भी गुप्त चेतन शक्ति का कथन है –

तब सब रहे पुरुष के माहीं।।
ज्यों बट बीज मध्य रह छाहीं।।

उस परम पुरुष के अन्दर एक इच्छा पैदा हुई कि मैं सृष्टि की रचना करूँ और अपने अंश रूप इंसान को देखकर प्रसन्न होऊँ। जैसे कली के अन्दर फूल छिपा होता है, उसी प्रकार सृष्टयारम्भ में वह पुरुष पुहुप के मध्य गुप्त था अर्थात उनकी चेतना गुप्त अथवा पोटेंशियम फॉर्म में थी। परम पुरुष के अन्दर इच्छा होने पर सर्वप्रथम शब्द प्रकट हुआ। स्फोट या बिग–बैंग के अनन्तर शब्द प्रकट हुआ अर्थात् गुप्त चेतना कायनैटिक या गतिशील या कायशील हुई।

सत्यपुरुष जब गुपत रहाये।
कारण करण नहीं निरमाये।।

संपुट कमल रह गुप्त सुनेहा।
पुहुप माहिं रह पुरुष विदेहा।।
इच्छा कीन्ह अंस उपजाये।
हंसन देखि हरष बहु पाये।।[10]

(1) चेतना रूपान्तरण

चेतना के भण्डार सतपुरुष से सर्वप्रथम शब्द की रचना हुई। उस शब्द से सारी सृष्टि की रचना हुई। आचार्य दण्डी के अनुसार शब्द नामक ज्योति से यह सम्पूर्ण संसार दैदीप्यमान है–

शब्द दो प्रकार का होता है – अनित्य और नित्य। अनित्य शब्द से व्याकरणाचार्यों का तात्पर्य उच्चारण जन्य और श्रोत्रग्राहय ध्वनि अथवा नाद से है तथा नित्य शब्द से उनका तात्पर्य मूलभूत शब्द से है जो स्फोट है। स्फोट नित्य है तथा ध्वनि अनित्य है। शब्द वाणी के रूप में परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी इन चार रूपों वाला है जो वक्ता के मूलचक्र, नाभि हृदय तथा कण्ठ इन चार स्थानों में अधिष्ठित है।

(क) पुहुप द्वीप

शब्द से ही सारी सृष्टि की रचना हुई है अर्थात जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह शब्द ने ही रचा है। विविधि लोकों और द्वीपों की रचना शब्द स ही हुई। इस शब्द से ही एक द्वीपलोक रचा गया जिसे पुहुप या पुष्प द्वीप कहा गया। इस पुष्पों के आधिक्य वाले पुष्प द्वीप में पुरुष ने चार कली वाले सिंहासन पर बैठकर विश्राम किया तदनन्तर सतपुरुष ने अपनी कला धारण की। जैसे ही पुरुष ने सिंहासन पर अपनी कला धारण की वैसे ही चारों ओर सुगन्ध फैल गईं। उस सुगन्ध की कोई तुलना नहीं की जा सकती।

प्रथमहि पुरुष शब्द परकाशा। दीप लोक रचि कीन्ह निवासा।।
चार कर सिंहासन कीन्हा। तापर पुहुप दीप कर चीन्हा।।
पुरुष कला धर बैठे जहिया। पगटी अगर बासना तहिया।।[11]

(ख) अट्ठासी द्वीप एवं षोडश पुत्र

पुहुप द्वीप की रचना के पश्चात् सतपुरुष ने अट्ठासी द्वीपों की रचना की। तदनन्तर षोडश बार शब्दोच्चारण के साथ पुरुष के षोडश पुत्रों का जन्म हुआ। यह सब कुछ उस पुरुष की इच्छा से शब्द द्वारा बनाया हुआ है –

पुरुष इच्छातैं सब अभिलाखा।।
सहस अठासीदीप रचि राखा।।
सबै द्वीप रह अगर समायी।। अगर वासना बहुत सुहायी।[12]

सभी द्वीपों से बहुत अधिक सुगन्ध निकलकर चतुर्दिक प्रसारित हो रही थी। बहुत सुहावन वातावरण था वहाँ। दूसरे शब्द के साथ सतपुरुष का प्रकाश फैला और उस प्रकाश में से कूर्म भक्त उत्पन्न हुए। कूर्म भक्तों ने पुरुष के चरणों में प्रणाम किया। पुरुष ने जब तृतीय शब्द का उच्चारण किया तो ज्ञानी जी का जन्म हुआ। ज्ञानी जी ने पुरुष के चरणों में शीश झुकाकर नमन किया। पुरुष से आज्ञा प्राप्त कर ज्ञानी जी और कूर्म भक्त सभी अपने–अपने द्वीपों में विराजमान हुए। जब पुरुष ने चौथे शब्द का उच्चारण किया तो विवेक नामक सत प्रकट हुए और पुरुष की आज्ञा प्राप्त कर वे भी अपने द्वीप में विराजमान हो गये –

दूजे शब्द भयेजु पुरुष प्रकाशा। निकसे कर्म चरण गहि आशा।
तीजे शब्द भयेजु उच्चारा। ज्ञान नाम सुत उपजे सारा।।
टेकी चरण सम्मुख ह्वै रहेऊ। आज्ञा पुरुष द्वीप तिन्ह दएऊ।।
चौथे शब्द भय पुनि जबहीं। विवेक नाम सुत उपजे तब ही।।
आप पुरुष किये द्वीप निवासा। पंचम शब्द सो तेज परकासा।।[13]

इस प्रकार इन द्वीपों में विराजमान पुरुष–पुत्रों का भोजन सुगन्ध रूपी अमृत था। पुरुष के पंचम शब्द के उच्चारण से तेज स्वरूप कालपुत्र प्रकट हुआ जिसने जीवों को सताया। समस्त जीव सतपुरुष के अंश हैं और उन सतपुरुष का कोई आदि–अन्त नहीं जानता। पुरुष के छठवीं बार शब्दोच्चारण से 'सहज' पुत्र प्रकट हुए। पुरुष के सातवीं बार शब्दोच्चारण से 'सन्तोष' नामक पुत्र प्रकट हुआ। पुरुष के आठवें शब्दोच्चारण से सुभाव जी नवें शब्दोच्चारण से आनन्द जी और दशवें शब्दोच्चारण के साथ क्षमा जी प्रकट हुए। ग्यारहे शब्दोच्चारण से निष्काम जी, बारहवें शब्दोच्चारण से जलरंगी जी, तेरहवें शब्दोच्चारण के साथ अचिंत जी, चौदहवें शब्दोच्चारण के साथ

'प्रेम जी'। पन्द्रहवें शब्दोच्चारण के साथ दीनदयाल जी और सोहलवें शब्द के साथ 'धीरज' जी नाम पुत्र प्रकट हुए। ये सभी अलग–अलग द्वीपों में विराजमान हुए। सत्रहवें शब्द से जोग नाम पुत्र प्रकट हुए। इस प्रकार एक पुहुपद्वीप और सोलह सुत अर्थात् सत्रह का प्रकटीकरण हुआ। सोलह पुत्र एक ही साथ प्रकट हुए। इनका रूप शब्द के प्रकटीकरण के साथ ही बना। शब्द चेतना से ही समस्त लोकों और द्वीपों का विस्तार हुआ। इन षोडश द्वीपों में विद्यमान षोडश पुत्रों का भोजन 'अगरु–अमो' अर्थात् सुगन्ध रूपी अमृत था।

पांचवे शब्द जब पुरुष उच्चारा। काल निरंजन भो औतारा।।
तेज अंगते काल ह्वै आवा। ताते जीवन कह संतावा।।
जीवरा अंश पुरुष का आहीं। आदि अन्त कोउ जानत नाहीं।।
छठे शब्द पुरुष मुख भाषा। प्रगटे सहज नाम अभिलाषा।।
सतयें शब्द भयो संतोषा। दीन्हो द्वीप पुरुष परितोषा।।
अठयें शब्द पुरुष उचारा। सुरति सुभाष द्वीप बैठारा।।
नवमें शब्द आनन्द अपारा। दशये शब्द क्षमा अनुसारा।।
ग्यारहें शब्द नाम निष्कामा। बारहवें शब्द जलरंगी नामा।।
तेरहवें शब्द अंचित सुत जाने। चौदहवे शब्द सुत प्रेम बखाने।।
पन्द्रहवे शब्द सुत दीन दयाला। सोलहवे शब्द भे धीर्यरसाला।।
सत्रहवे शब्द सुत योग संतायन। एक नाल षोडश सुत पायन।।
शब्द हित भयो सुतन अकारा। शब्दते लोक द्वीप विस्तारा।।
अग्रअमो दिव्य अंश अहारा। द्वीप द्वीप अंशन बैठारा।।[14]

इन द्वीपों में परमात्मा के विराजमान षोडश अंशों की शोभा और कला अनन्त है। यहाँ अवर्णनीय सुख और आनन्द है। षोडश द्वीपों में सतपुरुष के प्रकाश से ही उजाला हो रहा है। सतपुरुष के एक रोम का प्रकाश करोड़ों सूरज और करोड़ों चन्द्रमा से भी अधिक है।

पुरु के उजियार से सुन, सबै द्वोप अजो रहो।
सतपुरुष रोम प्रकाश एकहि, चन्द्र सूर्य करो रहो।।[15]

वह सतलोक, सतपुर या सचरखण्ड आनन्द, सुखों और परम चेतना का आगार ह। वहाँ शोक–मोह दुःख नहीं है। चेतन जीव – हंस, परम चेतन पुरुष के दर्शन से आनन्दित होते हैं और सत पुरुष के दर्शन से वे सुधापान करते हैं।

सतगुरु आनँधाम, शोक मोह दुःख तहँ नहीं।।
हंसन को विश्राम, पुरुष दरश अँचवन सुध।।[16]

(2) कालभक्ति एवं सृष्टि

अट्ठासी द्वीप और सोलह सुत पैदा हुए पर्याप्त समय व्यतीत हो गया। सोलह सुत अपने–अपने द्वीपों में विराजमान थे। निरंजन जो अपने द्वीप में विराजमान थे; उन्होंने एक पैर से खड़े होकर पुरुष की भक्ति करना आरम्भ कर दी तथा सत्तर युग पुरुष की भक्ति में लगा दिये तब पुरुष को आवाज आई। उन्होंने पूछा – निरंजन तुम क्या चाहते हो। तब निरंजन ने बड़े प्रेम से सिर झुकाकर कहा कि मेरे रहने के लिये यह स्थान बहुत कम है। मुझे कोई और बड़ा स्थान चाहिये, जहाँ जाकर मैं रहूँ।

युग सत्तर सेवा तिन कीन्ही। इकपद ठाढ़ पुरुष हर्षित दीन्ही।।
सेवा कठिन भांति तिन कीन्हा। आदि पुरुष हर्षित होय चीन्हा।।
पुरुष आवाज उठी तब बानी। कहा जानि तुम सेवा ठानी।।
कहै धरम तब सीस नवायी। देहु ठौर जहां बैठों जायी।।[17]

काल निरंजन की प्रार्थना पर अकाल पुरुष ने आज्ञा दी कि हे – धर्मराज तुम मानसरोवर द्वीप में जाओ तब निरंजन मान सरोवर द्वीप की ओर चल दिया प्रसन्न चित्त निरंजन ने पुनः मानसरोवर में पुरुष की सत्तर युग भक्ति की।

आज्ञा किये जाहु सुत तहवाँ। मानसरोवर द्वीप है जहवाँ।।
चल्यो धरम तब मानसरोवर। बहुत हरष चित करत कलोहर।।
मानसरोवर आये जहिया। भये आनन्द धरम पुनि तहिया।।
बहुरि ध्यान पुरुष को कीन्हा। सत्तर जुग सेवा चित दीन्हा।।
यक पगु ठाढे सेवा लायी। पुरुष दयालु दया उर आयी।।[18]

निरंजन की भक्ति से विगलित हो पुरुष ने अपने पुत्र सहज भक्त से कहा कि तुम जाकर धर्मराज से पूछो कि किस लिये वह अब मेरी भक्ति में इतना लीन है।

विकस्यो पुरुष उठ्यो जब बानी। बोलत बचन उठ्यो अधरानी।
जाहु सहज तुम धरम के पासा। अब कस ध्यान कीन्ह परकासा।।
सेवा बहु कीन्हा धर्मराऊ। दियो ठौर वहि जहाँ रहाऊ।।[19]

तब सहज भक्त ने शीश झुकाया और दसवें द्वार में, मानसरोवर द्वीप में जा पहुँचे और निरंजन से पूछा कि तम क्या चाहते हो। तब निरंजन ने कहा कि यह द्वीप मेरे लिए बहुत छोटा है। मुझे और अधिक स्थान तथा उस पर स्वामित्व चाहिये। या

तो मुझे देव लोक दो या पृथक् से कोई अन्य लोक। सहज भक्त ने पुरुष को यथावत् निवेदन कर दिया।

इतना ठाव न मोहि सुहाई। अब मोहि बकसि देहु ठकुराई।।
मोरे चित अस भौ अनुरागा। देश देउ मोहि करउ सभागा।।
कै मोहि देव लोक अधिकारा। कै मोहि देउ देश यकन्यारा।।[20]

तब पुरुष ने ये बचन कहे कि हम निरंजन की भक्ति से सन्तुष्ट हैं। हम उसे तीन लोक प्रदान करते है और वह शून्य देश में जाकर रहे। वहीं बैठकर वह सृष्टि रचना करे।

सुन्यो सहज के वचन, जब ही पुरुष बैन उच्चारेऊ।।
धरम से सन्तुष्ट हैं हम, वचन मम उर धारेऊ।।[21]

वस्तुतः मानसरोवर तक सतपुरुष की हद (सीमा) है। निरंजन अपने देश में परमात्मा (सतपुरुष) का दखल नहीं चाहता था अतः वह सहजभक्त से बिल्कुल अलग देश की इच्छा करने लगा जहाँ उसी का अधिकार हो। तब पुरुष ने सहज भक्त से कहा कि तुम निरंजन को जाकर कहो कि उसे सुन्न देश अर्थात् त्रिकुटी के देशपर, अधिकार दिया जाता है अर्थात उसे मैं मर्त्यलोक, पाताललोक और आकाशलोक उसके अधिकार क्षेत्र में देता हूँ। अब वह वहाँ रचना करे।

लोक तीनों ताहि दीन्हों, शून्य देश बसावहू।
करहु रचना जाय तहँवा, सहज वचन सुनावहू।।[22]

तथा

जाहु सहज तुम वेग, अस कहि आवो धर्म सो।।
दियो शून्य कर थेग, रचना रचहु बनायके।।[23]

तीनों लोकों के राज्याधिकार से धर्मराज निरंजन प्रसन्न भी था और आश्चर्य युक्त भी था।

सुनतहि वचन धर्म हरषाना। कछुक हर्ष कछुक विस्मय आना।।[24]

निरंजन सोचने लगा कि उसके पास सृष्टि रचना की सामग्री तो है नहीं अतः वह पुनः सृष्टि रचना के लिए आवश्यक सामग्री (तत्त्व) माँगने लगा–

पुरुष दयाल दीन्ह मोहिं राजू। जानु न भेद करों किमि काजू।।
गम्य अगम्य मोहे नहिं आयी। करों दया सोयुक्ति बतायी।।

बिन्ती करौ पुरुष सों मोरी। अहो भ्रात बलिहारी तेरी।।
किहि विधि रचूँ नव खण्ड बनाई। हे भ्रात सो आज्ञा पाई।।
मो कहुँ देहु साज प्रभु सोई। जाते रचना जगत की होई।।[25]

तब सतपुरुष ने सहजभक्त से कहा कि वह जाकर निरंजन से कहे कि वह बड़े भाई कूर्म भक्त के उदर से त्रिलोकी (मर्त्य–आकाश–पाताल लोक) की रचना का सारा सामान प्राप्त करले।

कूर्म के उदर आदि सब साजा। सो ले धर्म कर निज काजा।।
बिनती करे कूर्म सौ जाई। मांगि लेति तेहि माथ नवाई।।[26]

कूर्म भक्त उस समय समाधि में लीन थे। निरंजन ने न तो कर्म भक्त को प्रणाम किया और न शीश झुकाया। कूर्म भक्त का शरीर बारह पालँग था तथा निरंजन का छः पालँग का। निरंजन सोचने लगा इससे सारी सामग्री कैसे ली जाय। काल निरंजन ने माँगने के स्थान पर अपने नाखून से कूर्म के शीश पर प्रहार कर दिया। कूर्म के उदर से वायु (पवन) निकली। सिर के तीन खण्डों से ब्रह्मा, विष्णु, महेश के अंश निकले। जल, अग्नि आदि पाँच तत्त्व, चन्द्रमा, सूर्य, तारे तथा धरती ढ़कने वाला आकाशादि निकले। धरती को थामकर रखने वाला मीन, शेषनाग व वराह आदि निकले। इस प्रकार पृथिवी रचना का कार्य आरम्भ हुआ। निरंजन कूर्म का शीश छीनने के बाद प्रसूति बूँद लेने लगा।

कीन्हो काल सीस नख घाता। उदरते निकसे पवन अघाता।।
तीन सीस के तीनहु अंशा। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर वंशा।।
पाँच तत्व धरती आकाशा। चन्द्र सूर्य उडगन रहिवासा।।
विसर्‌यो नीर अग्नि शशि शूरा। निसर्‌यो नभ ढाकन महिथूरा।।
मीन शेष वराह महिथम्मन। पुनि पृथिवी को भयो आरम्भन।।
छीना सीस कुर्म को जबही। चले प्रसेव ठांव पुनि तब ही।।[27]

प्रसूति बूँद भी कर्म के पेट से निकली। इस बूँद से उनंचास करोड़ योजन धरती बन गई जैसे दूध के ऊपर मलाई हिलती है उसी प्रकार पानी के ऊपर धरती। तदनन्तर द्वादश दन्त (राशियाँ), पवन तथा स्थूल पृथ्वी बनी। कूर्म के उदर से कूर्म पुत्र उत्पन्न हुआ। कूर्म के ऊपर शेषनाग तथा वराह का स्थान हे। शेष नाग के सिर पर पृथिवी टिकी है। आदि कूर्म तो ऊपर ही है जो पुरुष के ध्यान म है। यह कूर्म

अंश पृथक् है जिस पर पृथिवी टिकी है। पुराणों में कूर्म की पृष्ठ तथा शेषनाग एवं वराह के द्रंष्टाओं पर पृथिवी के टिके होने का यही रहस्य है।

जबही प्रसेव बुंद जल दीन्हा। उंचास कोट पृथ्वी को चीन्हा।।
क्षीर तोय जस परत मलाई। अस जल पर पृथिवी ठहराई।।
बारह दंत राहु महिकर मूला। पवन प्रचंड मही स्थूला।।
अंड स्वरूप आकाश को जानो। ताके बीच पृथिवी अनुमानो।।
कूर्म उदर सुत कूर्म उत्पानो। तापर शेष वराह को थानो।।
शेष शीश या पृथिवी जानो। ताके हेठ कूर्म बिरयानो।।[28]

उधर आदि कूर्म भक्त ने पुरुष का ध्यान किया और पुरुष से आपबीती बताई कि निरंजन ने उसके साथ इस प्रकार का दुर्व्यवहार किया। पुरुष ने कूर्म से छोटा होने के नाते काल को क्षमा करने को कहा।

पुनः निरंजन सोचने लगे कि स्वर्ग, मर्त्य और पाताल का राज्य तो मिल गया किन्तु राज्य किस पर करूँ। जीव तो ह ही नहीं। मैं जीव कैसे उत्पन्न करूँ। पुनः निरंजन न एक पैर से खड़े होकर चौंसठ युग तक भक्ति की।

करि विचार अस हठ तिनधारा। लाग्यो करने पुरुष विचारा।।
एक पांव तब सेवा कियेऊ। चौंसठ युगलों ठाडे रहेऊ।।[29]

दया के सागर सतपुरुष निरंजन की सेवा क वशवर्ती होकर सहज पुत्र से कहने लगे कि निरंजन से पूछो कि उसे क्या चाहिये।

दयानिधि सुतपुरुष साहिब, बस सुसेवा के भये।।
बहुरि भाष्यो सहज सेती, कहा हब याचत नये।।[30]

तब निरंजन सृष्टि रचना के लिये बीज स्वरूप जीवात्मा की याचना करने लगा।

पुरुष सो बिनती करो हमारा। दीजै खेत बीज निज सारा।।[31]

सतपुरुष काल की सेवा के अधीन थे अतः उन्होंने उसके गुण–अवगुण नहीं विचारे।

सेवा वश सत पुरुष दयाला। गुण औगुण नहिं चिता किरपाला।।[32]

निरंजन की इच्छा को जानकर पुरुष ने अपनी मौज से एक कन्या बनाई जिसकी आठ भुजाएं थी। वह कन्या पुरुष के बांई ओर आकर खड़ी हो गई और सिर झुकाकर पुरुष से स्वयं को बुलाने का कारण पूछने लगी –

इच्छा कीन पुरुष तेहि बारा। अष्टंगी कन्या उपचारा।।
अष्ट बाहु कन्या होय आई। बायें अंग सो ठाढ़ रहाई।।[33]

तब पुरुष ने उनसे निरंजन के साथ मिलकर सृष्टि रचना के लिए कहा –

तबही पुरुष वचन परगासा। पुत्री जाहु धरम के पासा।।
देहुँ वस्तु सो लेहु सम्हारी। रचहु धर्म मिलि उतपतिवारी।।[34]

पुरुष ने अपना अंश अर्थात् जीवों का भण्डार 'सोहम्' दे दिया। शक्ति अर्थात आदि कुमारी ने चलने से पूर्व पुरुष से चेतना (प्राणि भक्षण से), उलंघनि (नियम का उल्लघंन अर्थात् कुंवारीपन), अभया (मृत्यु के भय से रहित होना) ये तीन वर प्राप्त किये।

दीन्हों बीज जीव पुनि सोई। नाम सुहंग जीव कर होई।।
जीव सोहंगम दूसर नाहीं। जीव सों अंश पुरुष को आहीं।।
शक्ति पुनि तीन पुरुष उत्पाना। चेतनि उलंघनि अभया जाना।।[35]

आदि कुंवारी जीव–बीज लेकर निरंजन के पास मानसरोवर जाने लगी निरंजन उस नारी की सुन्दरता से मन्त्र मुग्ध हो, अपना धैर्य खो बैठा और उसने उस कन्या को निगल लिया। तब कन्या के पुकारने पर सहज भक्त ने सहायता की।

चौरासी लख जीव, मूल बीज तेहिसंग दे।
रचना रचहु सजीव, कन्या चल सिर नाय के।।[36]

x x x x x x x x

धर्मराय कन्या कहै ग्रासा। काल स्वभाव सुनो धर्मदासा।।
कीन्ही ग्रास काल अन्याई। तब कन्या चित विस्मय लाई।।

x x x x x x x x

तब ही धर्म सहज लग आई। सहज शून्य तब लीन छुड़ाई।।[37]

निरंजन के इस व्यवहार से पुरुष बहुत क्रोधित हुए और उन्होने जोगजीत सुत को आदेश दिया कि वह मानसरोवर से पुरुष को निकालकर सुन्न देश में पहुँचा दे। स्वर्गलोक, पाताल लोक, और मर्त्य लोक उसके देश हैं, वह उनमे रहे, मानसरोवर में कभी न आए।

जोगजीत अस कहैं पुकारी, अहो धर्म तुम ग्रासेहु नारी।।
आज्ञा पुरुष दीन्ह यह मोही, इहिंते वेगि निकारो तोही।।[38]

यह सुनकर धर्मराज क्रोधित होकर जोगजीत से लड़ने को तैयार हो गया। जोगजीत ने पुनः कन्या से कहा कि वह पुरुष का ध्यान कर माया के बल से उदर फाड़कर बाहर आ जाये। जोगजीत ने भी इस हेतु पुरुष का ध्यान किया और उनकी चेतना से तेजोमय हो गये। जोगजीत ने निरंजन को भुजा पकड़कर मानसरोवर से नीचे पटक दिया। धर्मराज काँपने लगा और तत्क्षण कन्या उदर से बाहर आ गई और धर्मराज (काल चेतना) से भयभीत होकर सोचने लगी कि यह उसका देश नहीं है।

जोगजीत कन्या से कहिया। नारी कहे उदरमहँ रहिया।।
उदरफारि अब आवहु बाहर। पुरुष तेज सुमिरो तेहि ठाहर।।[39]

x x x x x x x x

गहिभुजा फटकार दीन्हों। परेउ लोकत न्यार हो।।
भयो त्रासित पुरुष डरते। बहुरि उठेउ सम्हार।।
निकसि कन्या उदरते पुनि। देख धर्महि अति डरी।।
अब नहिं देखो देश वह। कहो कौन विध कहँवा परी।।[40]

पुरुष ने काल निरंजन को शाप देते हुए कहा – कि तुम लाख जीवों का प्रतिदिन भक्षण करो तथा सवा लाख का नित प्रति विस्तार करो।

लच्छ जीव नि ग्रासन करहू। सवा लच्छ नित प्रति बिस्तरहू।।[41]

तब निरंजन ने आदि कुमारी से कहा कि वह डरे नहीं। पुरुष ने उसे मुझ धर्मराज के लिए ही बनाया है अतः हम दोनों मिलकर सृष्टि रचना करें। तुम मेरी स्त्री हो और डरो नहीं –

कहैं धर्म सुनि आदि कुमारी। अब जनि डरपो त्रास हमारी।।
पुरुष रचा तोहि हमरे काजा। इकमति होय करहु उपराजा।।
हम हैं पुरुष तुमहि हौ नारी। अब जानि डरपो त्रास हमारी।।[42]

कन्या ने कहा कि निरंजन तुमने मुझे अपने पेट में ग्रसित कर लिया था और मैं तुम्हारे उदर से जन्म लेकर बाहर आई हूँ। इसका कारण मैं तुम्हारी पुत्री हूँ और तुम मेरे पिता हो। इससे पूर्व हम उस पुरुष की सन्तान होने से भाई–बहिन हैं। तुम पहले जन्म लेने के कारण मेरे बड़े भाई हो।[43]

तब निरंजन बोला कि पाप–पुण्य का जाल उसी का बिछाया हुआ है और उसका लेखा माँगने वाला कोई नहीं है। अतः तुम्हें मुझ निरंजन की बात मान लेनी

चाहिय। निरंजन की बात सुनकर अष्टंगी हँसने लगी। दोनों भोग विलास करने लगे और उनसे ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश उत्पन्न हुए।

पाप–पुण्य हमहीं से होई। लेखा मोर न ले हैं कोई।।

x x x x x x x x

पुरुष दीन्ह तोहिं हम कहँ जानी। मानहु कहा हमारी भवानी।।

विहँसी कन्या सुन अस बाता। इक मति होय दोई रंगराता।।

x x x x x x x x

त्रियावार कीन्ही रति तबै, भये ब्रह्मा विष्णु महेश हो।।[44]

कबीर साहब धर्मदास से; पुरुष से काल को प्राप्त; काल चेतना से होने वाली सृष्टि के बारे में कहते हैं कि निरंजन, अग्नि, वायु, जल, पृथिवी और आकाश तो कूर्म भक्त के पेट से लाया और सत–रज–तम तीनों गुण कूर्म के शीश से लिये। तीन बूँद कन्या के गभ में रख दी जिनसे क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश का जन्म हुआ।

अग्निपवन जलमहिं आकाशा। कूर्म उदरतें भयो प्रकाश।।

पाँचों अंस ताहि सन लीन्हा। गुण तीनों सीसनसों कीन्हा।।

x x x x x x x x

बुन्द तीन कन्या भग डारा। तासँग तीनों अग सुधारा।।[45]

प्रथम बुन्द से ब्रह्मा जी पैदा हुए। उन्हें पाँच तत्त्वों का शरीर और रजोगुण प्रदान किया गया। दूसरी बूँद से विष्णु पैदा हुए उन्हें भी पाँच तत्त्वों का शरीर और सतोगुण प्रदान किया गया। तृतीय बिन्दु से शिव पैदा हुए, उन्हें भी पाँच तत्त्वों का शरीर और तमोगुण प्रदान किया गया। इसक बाद धर्मराज ने अष्टांगी से कहा कि सृष्टि रचना की समस्त सामग्री तथा आत्माओं (रूहों) का भण्डार तुम्हारे पास है। तीन पुत्र भी तुम्हें दे दिये गये। अब तुम सृष्टि रचना करो। इन तीनों पुत्रों के साथ राज्य करो। अब मैं तुमसे अलग रहूँगा। मेरा भेद किसी बालक को न बताना। मुझे ढूँढने में यदि वे सारा जन्म बिता देंगे तो भी वे मेरा दर्शन नहीं कर पायेंगे। जब कोई मुझे ही नहीं खोज पायेगा तो सतपुरुष को कैसे खोज सकेगा। ये मेरे वचन अटल हैं। निरंजन ने यह भी कहा कि जब तीनों पुत्र बड़े होकर बुद्धिमान हो जायें तो उनको समुद्र मन्थन करने के लिए भेज देना। इस प्रकार काल निरंजन भवानी को समझाकर सुन्न स्थल में चला गया और स्वयं पुरुष की सेवा में लीन हो गया।

कहै धर्म कामिनि सुनबानी। जो मैं कहूँ लेहु सोमानी।।
जीव बीज आहै तुव पासा। सो ले रचना करहु प्रकाशा।।
x x x x x x x x
त्रय सुत सोंप तोहि कहैं दीन्हा। अब हम पुरुष सेव चित लीन्हा।।
राज करहु तुम लै तिहुँ वारा। भेद न कहियो काहु हमारा।।
मोर दरस त्रय सुत नहिं पैहैं। जो मुहि खोजत जन्म सिरै हैं।।
ऐसो मता दिढैहो जानी। पुरुष भेद नहिं पावै प्रानी।।
त्रयसुत जब होहिं बुधिवाना। सिंध् मथन दे पठहु निदाना।।[46]

कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं कि काल के स्पर्श से पैदा होने के कारण जीवों पर काल का प्रभाव है और वे मतिहीन हो गये। मन की बातों में आकर जीव करणीय–अकरणीय कर्मों के प्रति विवेकहीन होने के कारण जन्म–जन्मान्तरों तक दुःखी रहता है। चाल तो काल की होती है किन्तु कष्ट जीवों को भोगना पड़ता है।[47]

(क) सिन्धुमन्थन एवं देव त्रयी चेतना

कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं बड़े होने पर तीनों पुत्रों – ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को माता भवानी ने समुद्र मंथन के लिए भेजा । यह समुद मंथन तीन बार ह्आ। योगाभ्यास में बैठा धर्मराज साँस छोड़ता तो वेद बनते जाते। साँस छोड़ते समय जो आवाज आती थी, उनके साथ वेदों के शब्द बनते थे। अस्तित्व में आकर वेद, निरंजन की प्रशंसा करने लगे और करबद्ध हो अपने लिए आदेश चाहने लगे। तब निरंजन ने उनसे समुद्र में जान को कहा और कहा कि जिसके साथ आपकी भेंट होगी, वही आप को प्राप्त करेगा। तत्क्षण एक आवाज उठी कि ये वेद स्वतेज से अपना पता बतायेंगे।

त्यागो पवन रहित पुनि जबही। निकसेउ वेद स्वास सँग तबही।।
स्वास सँग आयउ सो वेदा। विरला जन कोई जाने भेदा।।
अस्तुति कीन्ह वद पुनि ताहां। आज्ञा का मोहि निर्गुनाहां।
कह्यौ जाव करू सिंधुनिवासा। जेहि भेटे जैहो तिहि पासा।।
उठी आवाज रूप नहिं देखा। जोति अगम दिख लावत भेखा।।
जलेउ वेद पुनि तेज अपाने। तेज अन्न पुनि विष संधाने।।
चले वेद तहवाँ कहैं जाई। जहँवा सिन्धु रचा धर्मराई।।[48]

प्रथम बार सिन्धुमन्थन

तीनों भाइयों के समुद्र मंथन करने पर तीनों को तीन वस्तुए प्राप्त हुई – ब्रह्मा को वेद, विष्णु को तेज और शिव को विष। तीनों माता भवानी के पास आये। उन्होंने तीनों वस्तओं को अपने पास सुरक्षित रखने को कहा।

तीनों कीन्ह मथन तब जाई। तीन वस्तु तीनों जन पाई।।
ब्रह्मा वेद तेज तेहि छोटा। लहुरा वासु मिले विष खोटा।।[49]

द्वितीय बार सिन्धुमन्थन

माँ ने पुनः समुद्र मन्थन के लिए कहा और साथ ही समुद्र से प्राप्त वस्तुओं को उनके समक्ष प्रस्तुत करने का आदेश दिया। इधर भवानी ने अपने शरीर के मैल से तीन गोलियाँ बनाईं तथा सतपुरुष से प्राप्त चेतनात्माओं (जीवात्माओं) के भण्डार में से तीन जीव आत्माएं निकालकर उन गोलियों में डाल दीं तथा बालकों के पुनः समुद्र तक पहुँचने से पूर्व तीनों गोलियों को समुद्र में छिपाकर रख दिया। पुनः समुद्र मन्थन करने से उन्हें तीन कन्याएं प्राप्त हुई जिन्हें लेकर वे माता के पास आये और शीश नमन किया। माता ने आशीर्वाद देते हुए सावित्री की ओर संकेत करते हुए ब्रह्मा जी से कहा इसे तुम अपनी अर्द्धांगिनी स्वीकार करो। विष्णु से लक्ष्मी को तथा शिव से पार्वती को स्वीकार करने को कहा। भवानी ने तीनों से मिलकर सृष्टि रचना का आदेश दिया।

पुनि तुम मथहु सिन्धु कहे जाई। जो जेहि मिले लेउ सो भाई।।
कीन्ह चरित अस आदि भवानी।। कन्या तीन कीन्ह उत्पानी।।
x x x x x x x x
सावित्री ब्रह्मा तुम लेऊ। है लक्ष्मी विष्णु कहै देऊ।।
पारवती शंकर कहँ दीन्हीं। ऐसी माता आज्ञा कीन्हीं।।
x x x x x x x x
कामबसी भये तीनों भाई। देव दैत दोनों उपजाई।।
धर्मदास परखो यह बाता। नारी भई हती सो माता।।[50]

तृतीय बार सिन्धुमन्थन

माता भवानी ने पुनः तीसरी बार समुद्र मन्थन को कहा। तीनों भाई पुनः समुद्र मन्थन करने लगे। समुद्र के मध्य से ब्रह्मा को वेद मिले। विष्णु को सुधा तथा शिव

को विष प्राप्त हुआ। चौदह रत्न भी समुद्र से मिले जिन्हें लेकर वे माँ भवानी तक पहुँचे।

माता बहुरि कहैं समझाई। अब फिर सिंधुमथो तुम भाई।।

x x x x x x x x

मथ्यो सिन्धु कहु बिलंबन कीन्हा। मिला वेद सो ब्रह्मै लीन्हा।।

चौदह रतन की निकसी खानी। ले माता पहैं पहुँचे आनी।।

तीनहु बन्धु हरषि ह्वै लीन्हा। विष्णु सुधा पायउहर विष दीन्हा।।[51]

पुनः माँ भवानी ने तीनों को सृष्टि रचना का आदेश दिया। चार खानियाँ तैयार की गईं, अण्डज, पिण्डज (जेरज) ऊष्मज या उखमज (स्वेदज) अस्थावर या अचल (उद्भिज)। अण्डज की उत्पत्ति माँ भवानी ने स्वयं की। पिण्डज की ब्रह्मा ने, ऊष्मज या स्वेदज की विष्णु ने तथा अस्थावर की सृष्टि शिव ने की। चौरासी लाख योनियाँ रची गई। आधा भाग जलमय तथा आधा भाग स्थल बना।

पुनि माता अस वचन उचारा। रचहुँ सृष्टि तुम तीनों वारा।

अण्डज उत्पत्ति कीन्हा माता। पिण्डज ब्रह्मा कर उत्पाता।।

ऊष्मज खानि विष्णु व्यवहारा। शिव अस्थावर कीन्ह पसारा।।

चौरासी लख योनिन कीन्हा। आधा जल आधा थल कीन्हा।।[52]

इस प्रकार काल निरंजन आद्या को जीवात्माओं तथा ब्रह्मा, विष्णु महेश तीनों पुत्रो को सौंप कर तथा तीनो पुत्रों के बुद्धिमान होने पर उन्हें समुद्र मन्थन हेतु भेजने के लिए कहकर, निरंजन सुन्न देश में चला गया और पुरुष की सेवा में लीन हो गया।

(ख) कला चेतना

चतुर्विध सृष्टि चाहे वह चल हो या अचल चेतना सम्पन्न है। पुरुष से प्राप्त वरदान के अनुसार काल त्रिलोकीनाथ अर्थात स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल का अधिपति हो गया। **काल–कला** से चार प्रकार की सृष्टि हुई। प्रत्येक प्रकार में चेतना की मात्रा पृथक् है। कबीर साहब ने पिण्डज और जेरज को पृथक् कर पाँच भेद माने हैं। स्थावर (उद्भुज) सृष्टि में एक (तत्त्व– पानी या मिट्टी) की चेतना गुप्त रूप में रहती है। जैसे वनस्पतियाँ एवं पर्वतादि। ऊष्मज या स्वदेज जैसे कीट–पंतगे जूँ आदि में दो तत्त्वों (अग्नि एवं वायु) की प्रधानता होती है। अण्डज खान में तीन तत्त्व जल, अग्नि और वायु प्रधान होते हैं। पिण्डज जैसे– चौपाये, जानवर आदि में जल, मदा, अग्नि

और वायु तत्त्व प्रधान होते हैं। जेरज या मनुष्य योनि में पाँच तत्त्वों की प्रधानता होती है अर्थात उपर्युक्त चार के अतिरिक्त पंचम आकाश तत्त्व (बुद्धि तत्त्व) होता है। मनुष्य सत, रज एवं तम इन तीनों से चेतना सम्पन्न है। मनुष्य ही इन सबमें उत्तम है जो सतगुरु से नामदान ले तक सतलोक जा सकता है।

एक तत्त्व अस्थावर जाना। दोय तत्त्व ऊष्मज परवाना।।
तीन तत्त्व अण्डज निरमाई। चार तत्त्व पिण्डज उपजाई।।
पाँच तत्त्व मानुष विस्तारा। तीनों गुण तेहि माहिं सँवारा।।[53]

तथा

सुनु धर्मानि निज अंश अभूषण। तोहि बुझाय कहौ यह दूषण।
x x x x x x x x
खनि अण्डज तीन तत्त्व हैं, आप वायु अरु तेज हो।।
अचल खानो एक तत्त्वहि, तत्त्व जल का थेग हो।
सोरठा – ऊष्मज तत हैं दोय, वायु तेज सम जानिये।।
पिण्डज चारहिं सोय, पृथ्वी तेहि अप वायु सम।।
पिण्डज नर परधान, पांच तत्त्व तेज संग है।
कहें कबीर परमान, धरमदास लेहु परखि के।।
पिण्डज नर की देह सँवारा। तामें पाँच तत्त्व विस्तारा।।
ताते ज्ञान होय अधिकाई। गहै नाम सत लोकहि जाई।।[54]

चौरासी लाख योनियों में नौ लाख प्रकार के जल के जीव हैं चौदह लाख प्रकार के पक्षी, सत्ताईस लाख प्रकार के कीड़े–मकोड़े तथा तीस लाख प्रकार की वनस्पति आदि (अस्थावर) है। चार लाख प्रकार की मनुष्य योनि है जिसमें मनुष्य, यक्ष, किन्नर, गन्धर्वादि है। पाँच तत्त्वों से निर्मित होने के कारण मनुष्य में ज्ञान की अधिकता होती है। मनुष्य पुरुष के नाम–प्रताप से सतलोक पहुँच जाता है।

नौ लख जल के जीव बखानी। चौदह लाख पक्षो परवानी।।
किरम कोट सत्ताइस लाखा। तीस लाख अस्थावर भाखा।।
चतुर लक्ष मानुष परमाना। मानुष देह परम पद जाना।।[55]
पिंडज नर की देह सँवारा। ता में पाँच तत्त्व विस्तारा।।
ताते ज्ञान होय अधिकाई। गहे नाम सतलोकहि जाई।।[56]

इस प्रकार अनुराग सागर में संसार की उत्पत्ति का कथन है। यह संसार की उत्पत्ति जिस परम चेतना से हुई हैं वह चैतन्य पुरुष सर्वप्रथम सुन्न समाधि में था। इस ब्रह्माण्ड की रचना तब नहीं हुई थी और जीवात्माएं भी तब न थीं। सब कुछ सच्चिदानन्द परमात्मा में समाया हुआ था। सत्तपुरुष के अन्दर जब यह इच्छा हुई कि सृष्टि रचना की जाय तो उसके अन्दर से शब्द प्रकट हुआ।

प्रो. सत्संगी साहब का कथन है "वस्तुतः जिन सुरतों में स्थूल माया के प्रति अधिक आकर्षण था वे पिंड देश में रखीं गई (प्रेम प्रचाकर, 3 मार्च 2008) स्पष्ट है कि परम पुरुष ने जिन सुरतों या आत्माओं का, काल और माया के प्रति झुकाव था, उनके चैतन्यीकरण के लिए (काल निरंजन द्वारा) सृष्टि रचना की।

अमृत वचन (पृ. 23–24) में कहा गया हैं – " उस सत्–करतार की चेतन धारों के प्रताप से यह तमाम रचना रूपवती हुई है और इसके कायम और इंतजाम के लिए अटल और दानाई में मुकम्मल नियम उसी आदि कारण ने कायम किये हैं।

आद्या या भवानी के द्वारा ब्रह्मा, विष्ण्–महश को सृष्टि रचना, पालन–पोषण एवं विनाश कार्य में संलग्न कर दिया गया। निरंजन ने चारों वेदों को अपनी श्वासों से रचकर अनेक मत–मतान्तर फैला दिये जिससे जीव इन्हीं में उलझा रहे। इस प्रकार यह त्रिलोकी काल की लीला है। जीवों को भयानक कष्ट में देखकर सतपुरुष को दया आई तब उन्होंने अपने पुत्र (ज्ञानी जी) से जीवों को काल–जाल से छुड़ाकर लाने को कहा।

संदर्भ

1. अनु.पृ. 13
2. अनु.पृ. 13
3. अनु.पृ. 13
4. अनु.पृ. 13
5. ऋ. नासदीय सूक्त 10/129
6. कामायनी, श्रद्धासर्ग, पृ. 53
7. गुलाब साहब की बानी – शब्द–7
8. अनुराग सागर, पृ. 79
9. कल्याण योगांक, पृ. 79
10. अनु. पृ. 14

11.अनुराग सागर, पृ. 14

12.अनुराग सागर, पृ. 14

13.अनुराग सागर, पृ. 14

14.अनुराग सागर, पृ. 14–15

15.अनुराग सागर, पृ. 15

16.अनुराग सागर, सोरठा – 12, पृ. 15

17.अनुराग सागर, पृ. 15

18.अनुराग सागर, पृ. 15–16

19.अनुराग सागर, पृ. 16

20.अनुराग सागर, पृ. 16

21.अनुराग सागर, पृ. 16

22.अनुराग सागर, पृ. 17

23.अनुराग सागर, सोरठा 13, पृ. 17

24.अनुराग सागर, पृ. 17

25.अनुराग सागर, पृ. 17

26.अनुराग सागर, पृ. 18

27.(अनुराग पृ. 18)

28.अनुराग सागर पृ. 18

29.अनुराग सागर, पृ. 19

30.अनुराग सागर, पृ. 19

31.अनुराग सागर, पृ. 20

32.अनुराग सागर, पृ. 20

33.अनुराग सागर पृ. 20

34.अनुराग सागर पृ. 21

35.अनुराग सागर पृ. 21

36.अनुराग सागर पृ. 21

37.अनुराग सागर पृ. 22

38.अनुराग सागर पृ. 23

39.अनुराग सागर पृ. 23

40.अनुराग सागर पृ. 24

41.अनुराग पृ. 22

42.अनुराग सागर पृ. 24

43.अनुराग सागर पृ. 24

44.अनुराग सागर पृ. 24–25

45.अनुराग सागर पृ. 25

46.अनुराग सागर पृ. 26

47.अनुराग सागर, पृ.26

48.अनुराग सागर पृ. 27

49.अनुराग सागर, पृ. 28

50.अनुराग सागर पृ. 28

51.अनुराग सागर, पृ. 28–29

52.अनुराग सागर पृ. 29

53.अनुराग सागर पृ. 29

54.अनुराग सागर पृ. 46–47 छन्द 33–35

55.अनुराग सागर, पृ. 46

56.अनुराग सागर, पृ. 47